प्राक्कथन

काव्य या कोई भी कलात्मक सृजन ईश्वर की इच्छा से या यदि तार्किक के शब्दों में कहें तो स्वत: स्फूर्त होता है। इसलिए यह कहना कि मैंने भीष्म को नायक बनाकर यह ग्रंथ लिखा है, घटना हो जाने के बाद उसे न्याय संगत ठहराने के लिए तर्क ढूंढने के समान है। मुझे तो लगता है कि पात्र अभिव्यक्ति के लिए कोई माध्यम ढूंढ लेते हैं। यह मैं अपने बार-बार के अनुभव के आधार पर कह रहा हूं। सन् 1989 में कटनी मध्यप्रदेश में पदस्थ मेरी काव्य यात्रा स्वत: आरम्भ हो गयी थी। तब सर्वप्रथम कर्ण के विषय में राधेय नामक महाकाव्य लिखा। उस समय मुझे लगा था कि संभवत: दिनकर जी की रश्मिरथी और शिवाजी सावंत महोदय का उपन्यास मृत्युंजय पढ़कर मुझे प्रेरणा मिली होगी। किन्तु 1996 में जब अश्वत्थामा पर लेखन प्रारम्भ हुआ तब किसी ग्रंथ से प्रेरणा की बात लागू नहीं हुई। अश्वत्थामा जैसे पात्र पर लिखा भी बहुत कम गया है और कोई हिन्दी काव्य ग्रंथ मेरी जानकारी में भी नहीं था फिर भी ईश्वर की असीम और अहेतुकी अनुकम्पा से यह ग्रंथ 2003 में प्रकाशित हो गया। इसके पश्चात् चाणक्य पर एक उपन्यास लिखने का मन बनाया। जिसका कार्य 2003 से तीन वर्ष चला और बीच में ही अस्वस्थता के कारण रोकना पड़ा। यह 90 प्रतिशत ही पूर्ण हो सका है। इसके पश्चात् दीर्घ कालीन अस्वस्थता के बाद स्वास्थ्य लाभ होने पर अचानक मई 2009 के अंतिम सप्ताह से जुलाई 2009 तक मरूस्थल नामक छ: अध्याय का एक खण्ड काव्य सृजित हो गया। जिसकी कोई पौराणिक पृष्ठ भूमि नहीं है और जो भारत तथा विश्व की वर्तमान आतंकवादी प्रवृति से उत्थित पीड़ा के कारण लिखा गया। इसके समापन पर इसे विद्वानों के विचारार्थ भेजने के उपरांत मैं कुछ निश्चिंत हुआ और चाणक्य का पुन: स्मरण करने लगा। किन्तु तभी मन 2300 वर्ष पूर्व के स्थान पर 5200 वर्ष पीछे चला गया और मनोभूमि पर भीष्म प्रकट हो गए। सितम्बर 2009 से लेखन प्रारम्भ हुआ और आश्चर्यजनक तीव्रता से इसके 10 अध्याय अक्टूबर 2009 अर्थात दो माह से भी कम समय में पूर्ण हो गए। और दिसम्बर माह तक ग्रंथ के 18 अध्याय पूर्ण हो गये, तब मन में संकल्प आया कि 22 जनवरी को भीष्म अष्टमी है जिस दिन उन्होंने महाप्रयाण किया था यदि उस दिन तक ग्रंथ पूर्ण हो जाए तो मैं स्वयं को कृतकृत्य समझूँगा। ऐसा ही हुआ 20 सर्गों का 1304 पद्यों से युक्त यह ग्रंथ सृजित हो गया। कलेवर की दृष्टि से यह काव्य राधेय और अश्वत्थामा से बड़ा है। राधेय में 14 सर्ग और 1250 पद्य हैं तो अश्वत्थामा में 18 सर्ग और 1450 पद्य हैं किन्तु देवव्रत में 20 अध्याय और 1304 पद्य हैं। इसमें भी छन्दोबद्धता पर मेरा आग्रह रहा है यहाँ 32 प्रकार के छंदो (हिन्दी के लगभग 18 प्रकार के और संस्कृत के 14 प्रकार के वृत्तों) का प्रयोग किया गया है। राधेय में 27 प्रकार और अश्वत्थामा में 42 प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ था।

1989 में जब लेखन कार्य प्रवृत्त हुआ था तब यह भान भी नहीं था कि इतना कुछ लिख जाएगा। राधेय को भी एक खण्ड काव्य ही बनाने का सपना था किन्तु इसके महाकाव्यत्व से मुझे संबल मिला, अपनी व्यस्तता के कारण मैं सृजन कार्य को समय नहीं दे पाता था अन्य सभी पारिवारिक व सामाजिक दायित्वों व कार्यों की उपेक्षा करके ही राधेय लिख पाया। तब उसकी पूर्णता पर सोचा था कि अब आगे कुछ नहीं लिखूंगा किंतु ईश्वर की इच्छा कुछ और ही थी। वर्ष 1996 में अश्वत्थामा का लेखन प्रारंभ हुआ जो रूक-रूक कर 2002 तक चला यह ग्रंथ भी 2003 में प्रकाषित हो गया तब मन में यह संकल्प आया कि मैं दो प्रबंध काव्य और दो खण्ड काव्य तथा एक उपन्यास इस प्रकार पांच ग्रंथ ही अपने जीवन काल में लिखूंगा। ईश्वर की कृपा से यह लक्ष्य पूरा होने जा रहा है और राधेय, अश्वत्थामा और देवव्रत तीन महाकाव्य तथा मरूस्थल खण्ड काव्य लिखा जा चुका है। पांचवी रचना चाणक्य पर उपन्यास के रूप में है जो ईश्वर की कृपा से एक-दो वर्ष में पूरी हो जाएगी। माता सरस्वती को ये पांच पुष्प समर्पित कर लौकिक साहित्य साधना से विरत होने का मेरा संकल्प है। आगे हरि इच्छा।

महाभारत के ही पात्रों को मैंने तीनों काव्यों का विषय क्यों बनाया। इसका उत्तर देने में समर्थ नहीं हूं। किन्तु विद्वान इसे मानेगें कि महाभारत के पुरूष पात्रों में प्रधान वेदव्यास, भीष्म, कृष्ण, धृतराष्ट्र, विदुर, अर्जुन, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन और अश्वत्थामा ही है। इनमें भी यदि कोई कहे कि तीन सबसे महत्वपूर्ण कौनसे हैं, तो यह निर्णय कठिन है। अलौकिक दृष्टि से कृष्ण, वेदव्यास और भीष्म प्रमुख हैं। तो लौकिक दृष्टि से कृष्ण, भीष्म और कर्ण। मुझे सबसे महत्वपूर्ण पात्र लगते हैं। श्रीकृष्ण पर कुछ लिखना बाल बुद्धि के लिए असंभव है। जिन्होंने लेखनी चलायी भी है, उन्होने सूर्य को छूने जैसा दुस्साहस ही किया है और कई सम्पातीवत गिरे भी हैं। श्रीकृष्ण के विषय में वही लिख सकता है, जिसने आत्म दर्शन कर लिया हो। श्रीकृष्ण को पहचानने में द्वापर में भी कुछ ही व्यक्ति समर्थ हो पाए थे जिनमें वेदव्यास, भीष्म, कर्ण और विदुर थे। अर्जुन को तो युद्ध प्रेरित करने के लिए भगवान ने भीष्म पर्व में महाभारत से ठीक पूर्व स्वयं को प्रकट कर दिया था। इस कारण भी मुझे भीष्म और कर्ण महापुरूष और ज्ञानी लगते हैं।

भीष्म और व्यास ही ऐसे पुरुष पात्र हैं जिन्होने लम्बे समय तक कुरू का उत्कर्ष और क्षय देखा था। महाभारत युद्ध उनके लिए नितान्त व्यक्तिगत हानि भी थी। किन्तु जहां व्यास महान ज्ञानी और स्थित प्रज्ञता प्राप्त पुरूष थे। भीष्म ज्ञानयुक्त होकर भी संसारी ही थे। या कहें तो ज्ञानी कम धर्मपालक अधिक थे। गंगा से उत्पन्न अलौकिक पुरुष होते हुए भी उन्हें जीवन में बहुत संघर्ष देखने पड़े। अजेय होते हुए भी कुरू अवनति नहीं रोक सके। विक्रमी होते हुए भी अपनी बात नहीं मनवा सके और सबसे पीड़ाजनक बात है कि प्रतिज्ञाबद्ध होकर उन्हें कुपात्रों की सेवा में अपना शौर्य लगाना पड़ा तथा

वह भी पूरी तीन पीढ़ियों तक जिन पिता की प्रसन्नता के लिए प्रतिज्ञा की थी, वे भी अपराध बोधग्रस्त होकर लोक से प्रस्थित हुए। वासना जन्य आकर्षण से हुए असवर्ण विवाह की परिणति भी कुसन्तान के रूप में हुई। जिनकी अपात्रता को भी छिपाते हुए, कुरू जनपद कवच बनकर भीष्म को चिरकाल तक खड़े रहना पड़ा।

मानव को कष्ट होता है जब स्वरोपित, चिरकाल सेवा से वर्धित किया हुआ वृक्ष नष्ट हो जाता है। उससे भी अधिक पीड़ा तब होती है, जब मृदु फल और शीतल छाया की आशा से लगाया वृक्ष वर्धित होकर कंटकित और विष फल प्रदाता हो जाता है। भीष्म की मानसिक वेदना अकल्पनीयता की सीमा तक तब पहुंचती है, जब उनके द्वारा किए गए युद्ध में महान विक्रम को भी युवराज दुर्योधन अपर्याप्त बताता है और किसी पाण्डव वीर की मृत्यु न होने के कारण उन पर अनमने ढंग से लड़ने तथा छिपे पक्षपात तक का आरोप लगा देता है।

अंधे धृतराष्ट्र भूल जाते हैं कि उन्हें जो साध्वी पत्नी मिली है तो वह पितामह की शक्ति के कारण। यदि उनका राज्य चलता है तो पितामह की बुद्धि और शौर्य के कारण। और तो और उनका उचित पालन पोषण और शिक्षा भी हुई है तो पितामह के सुयोग्य निर्देशन और वात्सल्य के कारण। किन्तु अब धृतराष्ट्र शकुनि की नीति पर भरोसा रखते हैं। दुर्योधन की महत्वाकांक्षा को न्यायसंगत ठहराते हैं और भीष्म के स्थान पर कर्ण शौर्य का आश्रय ग्रहण करने लगते हैं।

राजा की अंधता, राजमाता की आरोपित अंधता, शकुनि की कुटिलता, युवराज की उद्दण्डता और महत्वाकांक्षा सब मिलकर हस्तिनापुर का वातावरण इतना विषाक्त कर देते हैं कि भीष्म विदुर व द्रोण तथा कृप जैसे महात्माओं को वहां घुटन होने लगती है। किन्तु विदुर विरक्त हैं, द्रोण और कृप को राज्याश्रय की चाह है। अत: वे ये सब झेल रहे हैं। किन्तु भीष्म केवल अपनी प्रतिज्ञावद्धता के कारण यह सब सहने को विवश हैं। युद्ध प्रारंभ होने से पूर्व जब युधिष्ठिर इन महात्माओं के पास युद्ध की आज्ञा व जय का आशीर्वाद लेने जाते हैं तो भीष्म, द्रोण व कृप तीनों ने ही एक ही बात बड़ी स्पष्टवादिता व साहस के साथ कही है-

अर्थस्य नरोदास:,
अर्थ: दासो न कश्चित।

जब नई पीढ़ी पुरातन मूल्यों को नहीं समझती, पुरातन अनुभवों को महत्व नहीं देती, हितकारिणी सलाह की उपेक्षा करती है, क्षेमावह आदेशों की अवज्ञा करती है तो पुरानी पीढ़ी को जो क्लेष, विवशता और करूणार्द्रता के कारण होता है, वह अकथनीय है।

महाभारत के पात्रों में भीष्म के चरित्र से आकर्षित होकर कवियों ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। महाभारत की उपजीव्यता सुप्रमाणित है। जैसे हिमालय से अनेक महानद, सरिताऐं और निर्झर स्त्रवित हुए हैं, वैसे ही काव्य के क्षेत्र में महाभारत के आधार पर संस्कृत और हिन्दी में तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनेक महाकाव्य, खण्ड काव्य, उपन्यास व गीति काव्य लिखे गए हैं। स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी काव्यों में भी महाभारत के भीष्म के चरित्र पर आधारित अनेक प्रबंध काव्य लिखे गए हैं। जिनका उल्लेख मैंने डॉ. जे. आर. बोरसे की मान्य रचना "स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी काव्य में महाभारत के पात्र" में पाया है और जिनके अध्ययन का मुझे अभी तक अवसर नहीं मिला है। ये हैं डॉक्टर स्वर्ण किरण रचित भीष्म, देवकीनन्दन विकल रचित प्रतिज्ञा, डॉ. किशोर काबरा कृत 'परिताप के पांच क्षण', श्री सत्येन्द्र मिश्र का 'अहोरात्र' तथा श्री रामसहाय लाल श्रीवास्तव का 'देवव्रत भीष्म' खण्ड काव्य।

मैंने अपने महाभारत आश्रित काव्यों का मूल आधार महाभारत को ही बनाया है और इसमें मेरा संस्कृत ज्ञान अत्यधिक उपादेय सिद्ध हुआ। जिसके कारण में मूल महाभारत पढ़ सका। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "आधुनिक कवि गण को पौराणिक पात्रों के चरित्र चित्रण करते समय आधुनिकता के नाम पर अपने मानसिक प्रक्षेप कर उन चरित्रों को समुज्ज्वल करने के स्थान पर अनिर्मल और विकृत करने की प्रवृत्ति की हम निन्दा करते हैं"। मैं आचार्य के इस विचार पूर्णत: सहमत हूं।

हमें विचार करना चाहिए कि जिन चरित्रों का सृजन चारों वेदों को व्यवस्थित करने वाले और 18 पुराणों के रचयिता चिरंजीवी आत्मज्ञानी पुरूष और मुनियों के शिरोमणि वेद व्यास जी ने स्वयं किया है उन्हें विकृत करने का अधिकार हमें नहीं है। काव्य को युगबोध के अनुरूप होना चाहिए, यह तर्क वहीं तक स्वीकार्य है जहां तक यह जन मानस के उदात्तीकरण में सहायक हो। मानव मन की दुर्बलताओं और बुद्धि की विकृतियों के अनुसंधान के लिए आदरणीय पौराणिक चरित्रों को प्रयोगशाला नहीं बनाना चाहिए। काव्य लेखन का उद्देश्य मानव को देवत्व की ओर ले जाने का है, न कि देवताओं, अर्धदेवताओं और देवोपम महापुरूषों को आधुनिक मनुष्य के तुच्छ धरातल पर खींच लाना।

आज जब संसार के विभिन्न देशों की संस्कृतियां अपनी पुरातन संस्कृति के अनुसंधान में लगी हैं, उस अमूल्य धरोहर को संजोने में प्रयासरत हैं, उसके समुज्ज्वल पक्षों को उजागर करने में प्रवृत्त हैं तो क्या हमारे कवि/लेखकों का भी यही कर्त्तव्य नहीं है। किन्तु विषाद का विषय है कि हमारे कुछ तथा कथित लेखक बौद्धिकता के नाम पर, वैज्ञानिक सोच के नाम पर या कम्युनिष्ट विचार धारा से प्रभावित होकर या केवल विवादित होकर प्रसिद्ध होने के लोभ के कारण या आत्मनिंदा परक पुस्तकों को पुरस्कृत करने के लिए तैयार बैठी देशी व विदेशी संस्थाओं के कारण भारतीय संस्कृति के

समुज्ज्वल पक्षों को तिरस्कृत कर उसके उन दोषों को उघाड़ने में लगे हैं जो दोष मध्यकाल में विदेशी शासन की दासता के अन्धकारपूर्ण युग में भारत के बहुसंख्यक अज्ञानी व त्रस्त समाज में आ गए थे। ये दोष आगंतुक हैं, सहज नहीं। इस अपरूपता के चित्रण से संस्कृति की भव्यता का निदर्शन नहीं होता और उस विवादित लेखक का कुछ महीने के लिए सम्मान व ख्याति भले बढ़ जाए, समाज व राष्ट्र का कोई भला नहीं होता।

एक दार्शनिक की समीक्षा उससे भी बड़ा दार्शनिक कर सकता है। ब्रह्मचर्य का महत्व वही समझ सकता है जो स्वयं ब्रह्मचारी हो। संत की निर्मलता और गहराई आत्मज्ञान सम्पन्न संत ही कर सकता है और एक योद्धा के विक्रम की परख भी एक योद्धा ही कर सकता है। इसी कारण मैंने अपनी सीमाऐं देखते हुए महर्षि वेदव्यास कृत चरित्र चित्रण को ही स्वीकार कर लिया है। भले ही इसे कोई परम्परावादिता कहे। अपनी जड़ों को पकड़े रहकर भी आधुनिक विचारों को अभिव्यप्ति दी जा सकती है। आधुनिक समस्याओं को रेखांकित किया जा सकता है। अतीत से विछिन्न हुए बिना भी वर्तमान को छुआ जा सकता है और भविष्य पर दृष्टि डाली जा सकती है। क्योंकि काल अविभाज्य है, सतत प्रवाह है, उसे हमने केवल अपनी गणना की सुविधा के कारण और अल्पजीविता के कारण विभाजित माना है।

युद्ध, स्त्रियों के सम्मान की रक्षा, उत्तराधिकार के प्रश्न, राज्यलोलुपता, अक्षम व्यक्तियों द्वारा आसन ग्रहण, कुचक्री व्यक्तियों के एक छोटे से समूह द्वारा शासन, ज्ञानी, विवेकी, अनुभवी, शौर्यवान, निरपेक्ष किन्तु सत्यवादी और इस कारण से अप्रिय व्यक्तियों की उपेक्षा हर युग की समस्याऐं रहे हैं और आज भी हैं। अत:, इन पौराणिक कथाओं को नए संदर्भ में प्रस्तुत करने में कोई बाधा नहीं है और इस कारण ये प्राचीन कथाऐं पुरानी नहीं पड़ जाती, क्योंकि वे शाश्वत सत्य गर्भित होती हैं।

शौर्यवान, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ और निष्काम व्यक्ति के लिए इससे अधिक और कोई पीड़ादायक अनुभव नहीं हो सकता कि उसे कुपात्रों की सेवा में अपनी शक्ति और बुद्धि लगानी पड़े और भीष्म ने यही सब सहा। कम से कम जीवन के उत्तरार्ध में।

यह व्यवस्था यह भी सिद्ध करती है कि यदि राजा ही अंधत्व धारण कर ले। पुत्र मोह से ग्रस्त हो, उसके अयोग्य पुत्र में अनुचित महत्वाकांक्षा हो, बलवान व्यक्ति का छल से प्राप्त सहयोग हो और देश को अन्दर से ही निर्बल कर देने के लिए प्रतिवद्ध, सुनियोजित कूटनीति वाला व्यक्ति मानित हो तो महामनस्वी परम बुद्धिमान और अजेय राष्ट्रहितचिन्तकों के प्रयास विफलता ही अर्जित करते हैं। भीष्मकालीन कुरूजनपद इसका ज्वलंत उदाहरण है और यह आज भी अप्रासंगिक नहीं हुआ है।

मैंने अनेक काव्य कृतियों के रहते हुए भी भीष्म पर अनायास ही लिखने का दुस्साहस किया है। वह सोचा समझा प्रयास नहीं है। यह राधेय और अश्वत्थामा जैसे ही स्वत: स्फूर्त रचना है। देवव्रत जैसे महापुरूष के चरित्रांकन में भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के उद्घाटन में पौराणिक कथा को आधुनिक युगानुरूपता देने में हिन्दी भाषा की सेवा में अपनी लघु बुद्धि के अनुसार कहां तक सफल हुआ हूं, यह तो सुधी पाठक ही निर्णीत करेंगे। छन्दों के प्रति मेरा स्वाभाविक आकर्षण है। संस्कृत का विद्यार्थी होने के कारण भाषा में तत्समता आ गयी है। जो साधारण पाठकों को कई बार खटकती भी है। किन्तु जहां मात्रा वर्ण यति व गति का ध्यान रखना पड़ता हो वहां विशिष्ट शब्द योजना करनी ही पड़ती है। यह पाण्डित्य प्रदर्शन का प्रयास न समझा जाए।

नर्मदा का अर्थ है सुखदायिनी। इसकी पावन पवित्रघाटी में निवास करते हुए पिछले पांच वर्षों में चाणक्य और मरूस्थल के बाद यह तीसरा ग्रंथ प्रणीत हुआ है। जिसके लिए में इस भूमि का तथा माता नर्मदा का भी ऋणी हूं।

अपनी साहित्य साधना का यह तृतीय प्रसून माता सरस्वती के चरणों में श्रृद्धावनत हो समर्पित है।

राधेय अश्वत्थामा और अब देवव्रत यह महाकाव्य त्रयी मेरी 20 वर्ष की दीर्घ साहित्य साधना का प्रतिफल है जो ईश्वर की कृपा से अनायास प्राप्त हो गया है।

इस महाकाव्य त्रयी को मैं 'शिवत्रयी' का अभिधान देता हूँ इसलिए नहीं कि मैं अपना नाम इसमें संलग्न कर रहा हूँ अपितु इस कारण कि सुधी पाठकों, भारतीय संस्कृति के जिज्ञासुओं काव्य रसज्ञों और कटु आलोचकों को भी यह त्रयी मोदवर्धिनी और कल्याण कर हो। माँ भारती की भव्य प्रतिमा को देखकर उसके भक्तों को पुन: अवर्णनीय आनंद प्राप्त हो जिसे ब्रहमानंद सहोदर कहा गया है ।

मैं ईश्वर को किस प्रकार धन्यवाद दूं जिसने मुझे अपात्र को भी मनुष्यत्व भारत भूमि में जन्म, पुरूषत्व, ब्राहमणत्व और कवित्व अर्थात जो-जो दुर्लभ है वह सब कुछ दे दिया है।

स्वयं को कवि कहने का दुस्साहस मैं नहीं करूंगा क्योंकि कवि शब्द का अर्थ है सर्वज्ञ ज्ञानी परमात्मा या शुक्राचार्य । तात्विक अर्थ में कवि कोई भी नहीं होता सृजन की धारा व्यक्ति के माध्यम से जिस क्षण प्रवाहित होती है केवल उतने समय तक वह व्यक्ति कवि भाव को क्षणिक रूप से प्राप्त कर लेता है और प्रवाह समाप्त होने पर पुन: सामान्य व्यक्ति हो जाता है । कोई पाण्डु लिपि खो जाने पर या नष्ट हो जाने पर पुन: यथा रूप सृजन इसी कारण असंभव होता है। कुछ अत्यंत मेधावी व्यक्ति इसके अपवाद हो सकते हैं

सृजनधारा का अवतरण इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है कि औपचारिक उच्च शिक्षा से वंचित अनेक व्यक्ति महान लेखन व कवि बन गए। अध्ययन करके कोई उदभट विद्वान हो सकता है किंतु उसमें कवित्व जाग्रत हो जाए यह आवश्यक नहीं।

मैं गुरूवर रामकृष्ण सराफ का ऋणी हूं जिन्होंने मुझे संस्कृत पढ़ाई और आज भी उनका वात्सल्य मुझे सुलभ है। गुरूवर स्वर्गीय श्री शंकर प्रसाद तिवारी का ऋणी हूं जिन्होंने मुझे भूगोल विषय पढ़ाया और सर्वदा प्रेरणा स्रोत रहे। लेखन के प्रति रूचि जगाने वाले प्रसिद्ध कवि श्री धरमपाल अवस्थी तथा प्रसिध्द विद्वान सेवक वात्सायन का आभारी हूं जो सदा शंकानिवारक और प्रेरणादायी रहे हैं।

इस ग्रंथ के टंकण में मेरी सहायता करने वाले श्री जीवन राम यादव, अनुवादक, राजभाषा, श्री कमलेश धमुनया, अवर श्रेणी लिपिक, राजभाषा, श्री अरूण शर्मा, गोपनीय अनुभाग, आयुध निर्माणी का कृतज्ञ हूं।

अपने परममित्र श्री एम. आंजनेयुलु, आई डी ए एस तथा एस. वी. मिश्रा, आई ओ एफ एस को धन्यवाद देता हूं जो निरंतर साहित्य सृजन संबंधी प्रगति पूछते रहते थे।

अंतत: अपनी पत्नी श्रीमती रत्नेश मिश्रा का आभार मानता हूं कि जिन्होंने दैनिक जीवन की चिंताओं से मुझे मुक्त रखा मुझ जैसे एकांत प्रिय और अध्ययन में मग्न रहने वाले व्यक्ति के प्रति भी कोप नहीं किया और अपने लिए कभी कोई मांग नहीं रखी यह उनका परोक्ष महान सहयोग है।

अमृत तुल्य वात्सल्य के चिरंतन स्रोत स्वर्गीया अम्मा जी श्रीमती कलावती एवं स्वर्गीया माताजी श्रीमती रामसहेली देवी जी को बार-बार प्रणाम है जिनके आशीर्वाद से यह शरीर और ऐसा व्यक्तित्व मिला पिताजी श्री भगवान दयाल मिश्र को प्रणाम है जो आज 75 वर्ष की आयु में भी मेरी कविता पढ़ते हैं सुझाव देते हैं और प्रोत्साहित करते हैं इन सबके आशीष से ही मैं उपलब्धिवान और सुखी हूं।

अंत में भगवान शंकर श्री गणेश जी और माता सरस्वती को प्रणाम है जिन्होंने मुझे अभूतपूर्व सफलताएं प्रदान कीं।

शिव कुमार मिश्र

दिनांक

स्थान - इटारसी